शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN

ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol-3 Issue-1
15 Jan-2012

भारत में समाजशास्त्रीय विश्लेषण के उपागम

डॉ0 अनूप कुमार सिंह

असिस्टेन्ट प्राफेसर, समाजशास्त्र विभाग, डी.ए.वी. कालेज, कानपुर

www.shodh.net

भारत में समाजशास्त्रीय विश्लेषण के उपागम

अन्य समाज विज्ञान के शोध विश्लेषण में भी अब समाजशास्त्रीय विधियों का उपयोग होने लगा है। समाजशास्त्रीय विश्लेषण के विभिन्न उपागमों के भारतीय परिप्रेक्ष्य में होने वाले तरीकों पर यह आलेख संक्षेप में प्रकाश डालता है।

बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में समाजशास्त्रीय सैद्धान्तीकरण में अप्रत्याशित परिवर्तन देखने को मिलते हैं। ये परिवर्तन वस्तुतः कुछ प्रथम विश्व युद्ध, रूस की क्रान्ति तथा अन्य आर्थिक अनिश्चितताओं के परिणामस्वरूप है। जेन्डर, प्रजाति, असमानता, प्रगति और क्रांति के मुद्दे प्रमुख रहे हैं। साथ ही साथ एक महत्वपूर्ण सूक्ष्म-सैद्धान्तिक विषय 'समाज में स्वंय' (EGO) के विकास ने भी सिद्धान्तकारों का ध्यान आकृष्ट किया है। फ्रायड ने व्यक्ति के जैविकीय प्रेरकों पर समाज के नियन्त्रण को महत्वपूर्ण माना। कूले एवं मीड ने दूसरे व्यक्तियों एवं प्रतीकों के प्रभाव को क्रमशः 'आत्मदर्पण के सिद्धान्त' (Looking Glass Self Theory) एवं 'महत्वपूर्ण अन्य' (Significant Others) के माध्यम से व्याख्यायित किया। इन सिद्धान्तकारों ने इस तथ्य पर बल दिया कि एक व्यक्ति उसी चरित्र एवं व्यक्तित्व से एक संस्कृति में समायोजित कर सकता है तथा दूसरी संस्कृति में असमायोजित हो सकता है। द्वितीय विश्वयुद्ध, अफ्रीका तथा एशिया में उपनिवेशों के विरूद्ध स्वतंत्रता का संघर्ष, समता के लिए बढ़ते नारीवादी एवं प्रजातीय आन्दोलनों तथा वैचारिक रूप से मार्क्सवादी समाजों के उत्थान एवं पतन की पृष्ठभूमि में समकालीन विभिन्न समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों का उद्भव हुआ है।

बीसवीं सदी के तीसरे दशक में समाजशास्त्र में पारसन्स एवं मर्टन प्रेरित प्रकार्यात्मक विचार के प्रभाव को देखा जा सकता है। प्रकार्यात्मक उपागम समाज को विभेदीकृत सावयव के रूप में देखता है जो कि मतैक्य एवं मानवीय आवश्यकताओं को पूरी करने वाली संरचना पर आधारित है। पूँजीवाद की समाप्ति के लिए संकल्पित मार्क्सवादी विचारधारा रूस से प्रभावित थी। रूस के समाजवाद के स्वप्न के टूटने के बाद पूँजीवादी सिद्धान्तकारों के अनुसार मार्क्सवाद समाप्त हो चुका था। यद्यपि 21वीं सदी के प्रारम्भ में पश्चिमी मार्क्सवादी विचारक पूँजीवादी समाजों में निहित बुराइयों, जिनमें सर्वहारा का अतिरिक्त मूल्य के माध्यम से शोषण एवं अल्पसंख्यक बुर्जुआ का उत्पादन के साधनों पर एकाधिकार, को कारण मानते थे साथ ही इनका मानना था कि इस समाज व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन होना चाहिये। इस सामाजिक विचारधारा ने समाजशास्त्र के सैद्धान्तीकरण की परम्परा को सर्वाधिक प्रभावित किया।

1960 में इमैनुअल वेलरस्टीन ने अफ्रीकी महाद्वीप के देशों पर शोध किया और उनका मत था कि राज्य और समाज को अलग-अलग करके नहीं समझा जा सकता है। वे नव स्वतंत्र राष्ट्रों द्वारा आर्थिक संकटों का सामना करने के लिए अपनाए गए आधुनिकीकरण सिद्धान्त की मूल मान्यताओं जैसे राष्ट्र-राज्य का पुनर्निर्माण, विकास का एकांगी पथ तथा अन्तर्राष्ट्रीय विकास संरचनाओं को नकारते थे। वेलरस्टीन का मानना था कि आधुनिकीकरण के माध्यम से नव विकसित राष्ट्रों की आर्थिक-सामाजिक एवं राजनीतिक संरचना पुष्ट नहीं हो सकती है। वेलरस्टीन ने विश्व व्यवस्था उपागम प्रस्तुत किया जिस सिद्धान्त के अन्तर्गत दमन एवं शोषण के विरूद्ध अन्ततः क्रांति के आधार को आवश्यक बताया गया। दमन के विश्लेषण में वस्तुतः राष्ट्र-राज्य के अन्तर्गत वर्गों को नहीं बल्कि विश्व पूंजीवादी व्यवस्था को ही विश्लेषण का केन्द्रीय तत्व माना गया। वेलरस्टीन ने यूरोप में पूँजीवाद के प्रसारित होने एवं चीन, रोम व अन्य देशों में इसका प्रसार न हो पाने के बहुत से कारणों पर प्रकाश डाला इस उपागम के अनुसार श्रम विभाजन एवं वर्ग विभाजन वैश्विक परिघटना है। अर्थव्यवस्था राजनीति की तुलना में पूर्वप्रभावी है।

समाजशास्त्र में वस्तुनिष्ठता एवं विषयनिष्ठता का विमर्श विभिन्न उपागमों के उद्भव की पृष्ठभूमि में है। प्रत्यक्षवाद एवं परिमाणात्मक उपागमों के बढ़ने के बाद सामाजिक परिघटनाओं का लगातार मूल्यांकन उनको दिये गये मान के अनुसार किया गया न कि उस परिघटना की संदर्भगत पृष्ठभूमि के आधार पर। इससे परिणाम यह हुआ कि वैज्ञानिक निष्कर्ष तो निकलते थे, परन्तु यह निष्कर्ष व्यापक अर्थ नहीं रखते थे, जिससे व्यापक सैद्धान्तीकरण की परम्परा खण्डित होने लगी।

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN

ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol-3 Issue-1
15 Jan-2012

भारत में समाजशास्त्रीय विश्लेषण के उपागम

डॉ0 अनूप कुमार सिंह

असिस्टेन्ट प्राफेसर, समाजशास्त्र विभाग, डी.ए.वी. कालेज, कानपुर

www.shodh.net

व्यक्तियों के दिन-प्रतिदिन के व्यवहार एवं संदर्भों से उपजी सामाजिक वास्तविकता का बोध करने के लिए परिमाणात्मक एवं वस्तुनिष्ठ उपागम उपयुक्त नहीं थे, अतः सूक्ष्म समाजशास्त्रीय उपागमों का उदय हुआ। जैसे प्रघटना विज्ञान, लोकविधि विज्ञान, सामाजिक विनिमय सिद्धान्त एवं उत्तर आधुनिकतावाद आदि। यहाँ तक कि संरचनावाद भी संदर्भगत अर्थों से ही निष्कर्ष निकालने में विश्वास रखता है। यह नवीन उपागम अपनी पद्धति में विषयनिष्ठ एवं गुणात्मक थे।

समाज विज्ञान की तरह समाजशास्त्र का विकास कई दशकों में हुआ है, इसका उद्देश्य समाज की यथार्थता को जानना है। इस यथार्थता को जानने की कई विधियाँ हैं, कई उपागम हैं। यह आवश्यक नहीं कि समाज के किसी एक समूह का अध्ययन केवल एक विधि से हो सकता है, कोई भी विधि अपने आप में अनन्य नहीं है, वर्तमान में विभिन्न विधियों को मिलाकर अध्ययन किया जाता है, ताकि शोध की प्राप्तियाँ बहुआयामी हों।

कुछ एक अवरोधों के बाद भी समाजशास्त्रीय अध्ययन के सार्वभौमिक उपागम भारत में प्रयोग किये गये हैं और आज भी इनका अनुप्रयोग हो रहा है। भारत, एशिया महाद्वीप के अन्य देशों यूरोप और अमेरिका में समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए निम्न उपागमों का प्रयोग किया जाता है।

भारतीय समाजशास्त्र के अध्ययन की ये प्रवृत्तियाँ पश्चिम की विचारधारा से प्रभावित रही हैं। ब्रिटिश प्रभाव के अन्तर्गत भारतीय समाजशास्त्र सामाजिक-मानवशास्त्रीय (Social Anthropological) प्रवृत्ति से प्रभावित रहा है। भारतीय ज्ञान के औपचारिक स्वरूप ब्रिटेन से प्रभावित रहे हैं। ब्रिटेन में जनजाति, गांव, प्रजाति, इत्यादि विषयों का अध्ययन अवलोकन एवं साक्षात्कार की पद्धतियों के आधार पर करने पर बल दिया जाता रहा है। इस प्रकार के अध्ययनों से उपनिवेश देशों में इनके राजनीतिक हित पूरे होते थे।

सैद्धान्तिक स्तर पर यह प्रश्न सदैव प्रस्तुत किया जाता है कि क्या समाजशास्त्र काल व देश, समाज व संस्कृति, अतीत व वर्तमान की विशिष्टताओं से प्रभावित होकर एक स्वायत्त स्वरूप व चरित्र प्राप्त करता है; यह ज्ञान की शाखा के रूप में अमूर्तता के उस स्तर पर व्याख्या करता है जो कि सार्वभौमिक होते हैं। अर्थात् संदर्भगत यथार्थ की व्याख्या की गहराई क्या इन आयातित सिद्धान्तों व उपागमों से सम्भव है। दूसरा प्रश्न है कि सामाजिक यथार्थ की अमूर्तता व मूर्तता के क्या कई स्तर होते हैं, क्या सभी समाज व संस्कृतियाँ किसी स्तर पर विश्लेषण ही नहीं वरन् सामान्य ज्ञान के आधार पर भिन्न नहीं है। तीसरा प्रश्न, सिद्धांत व संबोधों के निर्माण में संचयी अनुभव, ज्ञान, विरासत जो कि ऐतिहासिक व शास्त्रीय ज्ञान के आधार पर प्राप्त होता है, से संबंधित है। चौथा मुद्दा ज्ञान की राजनीति से जुड़ा है, किसी भी देश व समाज का ज्ञानमय निर्माण (Cognitive Construction) सप्रयास नकारात्मक रूप से क्यों किया जाता है? क्या इसके पीछे उपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद के निहित स्वार्थ नहीं है? अन्ततः महत्वपूर्ण प्रश्न भारतीय समाजशास्त्रियों के योगदान से जुड़ा है। क्योंकि भारतीय समाजशास्त्रियों ने ऐतिहासिक ज्ञान की धरोहर व लोक ज्ञान की मौखिक परम्परा को समीचीन रूप से प्रस्तुत करने का कोई संस्थागत या व्यक्तिगत प्रयास नहीं किया है।

वस्तुतः भारतीय समाजशास्त्र को ऐतिहासिक दृष्टिकोण से सूचनापरक, सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से परिष्कृत एवं तुलनात्मक अभिमुखन की विशेषताओं को स्वीकार करना होगा। भारतीय बौद्धिक परम्परा के विश्लेषण से समाज विज्ञान में नव-संबोध, संबोध-वर्गीकरण, संबोध-परिष्करण के ऐसे आयाम निहित हैं जो समाजशास्त्र के सार्वभौमिक कलेवर को परिष्कृत करने की क्षमता रखते हैं। प्राकृत व पाली की लाखों पाडुंलिपियाँ अनूदित व अप्राप्य रही हैं। अतः भारतीय समाजशास्त्र के सिद्धान्त व संबोध, आंचलिक व सांस्कृतिक वैशिष्ट्य से अछूते रहे हैं। सांस्कृतिक विशिष्टता, ऐतिहासिकता, व सामाजिक निरन्तरता के असीम व सशक्त आयाम समाजशास्त्र के सार्वभौमिक स्वरूप के गठन में अहम् भूमिका निभा सकते हैं।

भारतीय समाजशास्त्र को दर्शन एवं इतिहास से जोड़कर अधिक सशक्त रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है। सिद्धान्त निर्माण की प्रक्रिया इसी आधार पर अधिक परिपक्व रूप से उभर कर के आ सकती है। समाजशास्त्रियों को मूल्य निर्धारण व मानदण्डों के निर्माण में अहम भूमिका अदा करनी चाहिये क्योंकि परम्परा में यह कार्य शास्त्रीय ग्रन्थों में बुद्धिजीवियों द्वारा सम्पन्न होता था। मूल्य संकट की स्थिति का एक प्रमुख कारण यह है कि नव- सामाजिक स्थितियों, प्रभावों, संस्थाओं के परिवेश में अनेक ऐसे आयाम है जहाँ मूल्य व मानदण्डों का स्खलन हुआ है। नई स्थितियों, नयी भूमिकाओं, नवीन संस्थाओं से उत्पन्न परिस्थितियों के लिए उचित मानदण्डों का निर्माण बुद्धिजीवियों का कार्य है।

भारत के अध्ययन में आनुभविक क्षेत्र कार्य के आधार पर अनेक ग्रंथ लिखे गये; गाँव, जाति, धर्म परिवार, परिवर्तन, विकास, जीवनशैली पर अनेक प्रतिवेदन उपलब्ध हैं। परन्तु इस

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN

ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol-3 Issue-1
15 Jan-2012

भारत में समाजशास्त्रीय विश्लेषण के उपागम

डॉ0 अनूप कुमार सिंह

असिस्टेन्ट प्राफेसर, समाजशास्त्र विभाग, डी.ए.वी. कालेज, कानपुर

www.shodh.net

प्रारम्भिक क्षेत्र-अध्ययन में भारत की समस्याओं व विकास को यथोचित स्थान नहीं दिया गया। विगत कुछ वर्षों से अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा नियोजित समस्यामूलक अध्ययन भी कराये गये। जिसमें स्थानीय स्तर पर जन भागीदारी द्वारा विकास के लिए सामाजिक आंकलन पद्धति से यथार्थ के विश्लेषण की पहल की गई। इस प्रकार के अध्ययनों में इसके माध्यम से सभी स्टेक होल्डर को एक ईकाई के रूप में देखा जाता है। ये स्टेक होल्डर लाभकारी समूह, सरकारी कर्मचारी, आंचलिक नेता आदि सभी होते हैं। सामाजिक आंकलन के अन्तर्गत सामाजिक भिन्नता, जो कि जाति, वर्ग, लिंग, आयु, प्रजाति, सामुदायिकता के आधार पर निर्मित है, को स्वीकार किया जाता है। सामाजिक नियोजन में इन विभेदों को समुचित स्थान दिया जाता है, जिससे कि सभी लोगों को लाभ मिल सके। अध्ययन व विश्लेषण को लोगों के साथ व उनके सहयोग से निर्मित किया जाता है और निष्कर्षों को भी लोगों के साथ खुली चर्चा में बताया जाता है।

पी0आर0ए0 (Participatory Rural Appraisal) तकनीक में लोगों के द्वारा ही, उनकी समझ, शब्दावली, उनकी श्रेणियों, उनके अर्थों के आधार पर यथार्थ का निरूपण व निर्वाह किया जाता है। उपासित अध्ययनों (Subaltern Studies) में स्थानीय, निम्न वर्ग, अवहेलित समूहों के जीवन यथार्थ, इतिहास समस्याओं आदि का निरूपण किया जाता है। इस विधा के माध्यम से विगत वर्षों में अनेक अध्ययन हुये हैं। वृहद परम्परा, लघु परंपरा, सार्वभौमीकरण व क्षेत्रीयकरण के माध्यम से साधारण व्यापक व विशिष्ट-स्थानीय के मध्य सम्बन्धों का विश्लेषण किया जाता है।

भारत में अब तक के समाजशास्त्र के विकास पर विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि इसके अन्तर्गत अनेक सैद्धान्तिक एवं पद्धति-शास्त्रीय परिप्रेक्ष्य सन्निहित हैं। एफ0जी0बेली के अनुसार व्यक्ति जो सोचते हैं, उनके मूल्यों से समाजशास्त्र की विषयवस्तु बनती है। प्रो0 योगेन्द्र सिंह के अनुसार भारतीय समाजशास्त्र में किसी औपचारिक सिद्धान्त की रचना नहीं हुई है, अर्थात् सिद्धान्त तो नहीं के बराबर है, यद्यपि उपागम अनेक हैं। प्रो0 सिंह ने भारतीय समाजशास्त्र के विश्लेषण उपागमों को ध्यान में रखते हुये इसे 1952 से लेकर 1977 ई0 तक बांटकर विवेचना की है। इसमें 1952 से 1960 तक दार्शनिक उपागम का प्रभुत्व रहा है एवं समाजशास्त्रीय विश्लेषण के लिए यही उपागम पद्धति समाजशास्त्रियों ने उपयोग में लिया है। 1960 ई0 से 1965 ई0 तक सांस्कृतिक उपागम पर बल दिया जाता रहा और 1965 ई0 से 1970 ई0 तक संरचनावाद का जोर रहा। डयूमा, श्रीनिवास, मैकिम मैरिएट इसके प्रर्वतक रहें हैं। प्रो0 राधाकमल मुखर्जी, डी0पी0 मुखर्जी, ए0के0 सरन0, एस0पी0 नागेन्द्र आदि दर्शनशास्त्रीय उपागम के समर्थक रहे हैं। एफ0जी बेली, आन्द्रे बेतेई, अरोरा, राव, आई0पी0 देसाई, संरचनात्मक परिप्रेक्ष्य का प्रयोग करते हैं। (दोषी व जैन, 1998:86)

दार्शनिक उपागम को अपनाने वालों में भारतीय दर्शन तथा परम्परा से प्रभावित विचारक एवं समाज वैज्ञानिक रहे हैं, जिन्होंने समाजशास्त्रीय अध्ययनों में भारतीय दर्शन एवं परम्परा को उपागम के रूप में प्रयोग किया। लखनऊ सम्प्रदाय के समाजशास्त्रियों विशेषकर राधकमल मुखर्जी, धुर्जटी प्रसाद मुखर्जी तथा अवध किशोर सरन को इस दृष्टि से देखा जा सकता है। राधकमल मुखर्जी दर्शन की सहायता से सार्वभौमिक समाज विज्ञान के विकास की बात करते हैं। डी0 पी0 मुखर्जी भारतीय दर्शन एवं परम्परा को द्वन्दात्मक अध्ययन पद्धति के साथ जोड़ते हैं। आनन्द कुमार स्वामी से प्रभावित ए0के0 सरन विशिष्ट भारतीय समाजशास्त्र की बात करते हैं।

समाजशास्त्र में सांस्कृतिक उपागम के अन्तर्गत एम0एन0 श्रीवास्तव, रेडफील्ड, मिल्टन सिंगर, तथा मैकिम मैरिएट के कार्यों को सम्मिलित किया जा सकता है। विशेषकर एम0एन0 श्रीनिवास के दक्षिण मैसूर के कुर्ग लोगों के अध्ययन ने सांस्कृति उपागम को जन्म दिया, तदुपरान्त एस0सी0 दुबे, ड्यूमा एवं पोकाक भी इसी उपागम के अन्तर्गत आते हैं। एम0एन0 श्रीनिवास द्व ारा विकसित निम्न तीन अवधारणाएँ सांस्कृतिक उपागम को स्पष्ट करती हैं- सांस्कृतिकरण, पश्चिमीकरण, धर्मनिरपेक्षीकरण।

सैद्धान्तिक उन्मुखन की और जब भारतीय समाजशास्त्र में ध्यान दिया जाने लगा और अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर भारतीय समाजशास्त्र अपना स्थान बनाने लगा, तो भारतीय समाजशास्त्रियों ने संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम को एक बौद्धिक चुनौती के रूप में देखा। भारतीय समाजशास्त्रियों ने भारतीय समाज एवं सामाजिक संस्थाओं को समझने के लिए संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम को सर्वथा उपयुक्त समझा एवं दूसरे परिप्रेक्ष्य मार्क्सवादी, वेबर, पारसन्स प्रारूप लगभग नकार दिये गये।

प्रकार्यात्मक उपागम को परम्परागत समाजशास्त्र के अन्तर्गत एक प्रमुख एवं प्रभावकारी सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य के रूप में विगत अनेक दशकों से स्थापित रहा है। अनेक अध्ययन व अनुसंध नों में इस उपागम का उपयोग किया गया है। इस उपागम के प्रभाव को इस बात से आँका जा सकता है कि केवल समाजशास्त्र में ही नहीं, अपितु अन्य समाज विज्ञानों में भी इस उपागम को

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN

ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol-3 Issue-1
15 Jan-2012

भारत में समाजशास्त्रीय विश्लेषण के उपागम

डॉ0 अनूप कुमार सिंह

असिस्टेन्ट प्राफेसर, समाजशास्त्र विभाग, डी.ए.वी. कालेज, कानपुर

www.shodh.net

प्रयुक्त किया गया है। प्रकार्यात्मक उपागम का आधारभूत विचार है कि समाज अनेक भागों की अन्तर्निर्भरता एवं अन्तर्सम्बन्धों के आधार पर बना है। इन सम्बन्धों के आधार पर व्यवस्था का निर्माण होता है, जिसकी प्रकृति समन्वित व पूर्णता लिए हुये होती हैं। व्यवस्था के किसी एक भाग में परिवर्तन होने से अन्य भाग भी परिवर्तित होते हैं, पर संतुलन एवं स्थायित्व भी बने रहते हैं। यह उपागम संतुलन एवं स्थायित्व को सामाजिक व्यवस्था के नियमन के लिए आवश्यक मानता है। साथ ही इस बात पर बल दिया जाता है कि कोई भी सांस्कृतिक या सामाजिक तत्व व्यवस्था के अन्तर्गत ऐसे कार्य करता है जो कि व्यवस्था के बने रहने के लिए आवश्यक है। यह उपागम तत्वों के प्रभावों को व्यवस्था के लिए समन्वयता के आधार पर विश्लेषित करता है। (सिंह, 1998 : 35)

समाजशास्त्र में प्रकार्यवाद का उद्गम स्पेन्सर और दुर्खीम के विचारों से माना जाता है। स्पेन्सर की व्याख्या प्राणिशास्त्रीय सादृश्यता के आधार पर निर्मित हुई है। इस विचारधारा को प्रतिपादित करने में स्पेन्सर ने संरचना एवं प्रकार्यों के संबधों का उपयोग किया है। मानवशास्त्री मैलिनोवस्की एवं ब्राउन के अध्ययनों में भी संरचना एवं प्रकार्य अवधारणाओं का प्रमुख स्थान रहा है।

द्वन्दात्मक ऐतिहासिक विचारधारा के लेखक मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित हैं। सभी मार्क्सवादी यह धारणा लेकर चलते हैं कि आमूल राजनीतिक परिवर्तन के लिए मार्क्सवाद ही एक सशक्त एजेण्डा है। मार्क्सवादी विचारकों का एक आग्रह यह भी है कि इस उपागम में वर्ग विभाजन, संघर्ष, शक्ति और विचारधारा महत्वपूर्ण है। इस तरह का कोई भी संदर्श प्रकार्यवादी उपागम में नहीं होता है। इस उपागम ने समाजशास्त्रीय विश्लेषण में बहुत योगदान दिया है। इस उपागम के प्रवर्तकों में कोहेन, अल्थूजर आदि समाजशास्त्री हैं। हमारे देश में कतिपय समाजशास्त्रियों ने मार्क्सवादी उपागम का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। ए0 आर0 देसाई, डेनियल थार्नर, कैथलीन गफ तथा रामकृष्ण मुखर्जी ने मार्क्सवादी उपागम को बृहद समाजों के अध्ययन में लागू किया है। डी0पी0 मुखर्जी के लेखन पर भी द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी अध्ययन पद्धति का प्रभाव है। भारत, श्रीलंका, पाकिस्तान, जापान आदि एशिया के देशों की सामाजिक व्यवस्था को समझने के लिए ऐतिहासिक विधि अत्यन्त सहायक है। (एन0सी0आई0आर0टी0 1999:48-50)

सूक्ष्म समाजशास्त्रीय उपागमों के अन्तर्गत अध्ययन की इकाई व्यक्ति या लघु समुदाय होता है। सूक्ष्म-समाजशास्त्रीय उपागमों के अन्तर्गत प्रतीकात्मक अन्त:क्रियावाद, संरचनात्मक प्रकार्यवाद, विनिमय सिद्धान्त, इथनोमेथडोलॉजी, फेनोमेनालॉजी आदि आते हैं। इनके मानने वाले सिद्धान्तकार ब्लूमर, जर्ज होमन्स, स्कीनर, गारफिकल आदि हैं। हाल में सिद्धान्तीकरण के क्षेत्र में जो अभूतपूर्व परिवर्तन देखने को मिला है, वह माइक्रो एवं मैक्रो सिद्धान्तों के बीच की कड़ी है।

1980 के दशक से पहले अमेरिका के समाजशास्त्र में माइक्रो-मैक्रो को लेकर दो धड़ उभर कर आये। एक माइक्रो सिद्धान्तों की श्रेणी में आते हैं, दूसरे मैक्रो सिद्धान्तों की श्रेणी में आते हैं। इन दोनों के एकीकरण के प्रयास भी किये गये, जिसे टर्नर मेसो सिद्धान्तीकरण कहते हैं। यद्धपि इन दोनों के बीच स्पष्ट रेखा खींचना कठिन है। सूक्ष्म समाजशास्त्रीय उपागम दिन-प्रतिदिन की घटनाओं, मानव व्यवहारों, एवं अन्त:क्रियाओं के अध्ययन पर बल देते हैं।

प्रतीकात्मक अन्त:क्रियावाद समाजशास्त्रीय उपागम का एक प्रकार है। यह उपागम सामाजिक यथार्थ को समझने में विषयपरकता पर अधिक महत्व देता है एवं व्यक्ति के परिप्रेक्ष्य को केन्द्र में रखता है। यद्यपि हर्बट ब्लूमर सामाजिक अन्त:क्रिया की प्रक्रिया को अध्ययन का केन्द्रीय बिन्दु मानता है न कि अन्त:क्रिया के कारणों एवं प्रभावों को। यह उपागम इस बात को महत्व देता है कि प्रतीकों के माध्यम से सामाजिक अन्त:क्रिया किस तरह से निर्मित होती है। चार्ल्स कूले ने इस उपागम की आधारशिला रखी, एवं आत्म दर्पण के सिद्धान्त के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया कि व्यक्ति के 'स्व' की चेतना कुछ सीमा तक इस पर निर्भर करती है कि अन्य व्यक्ति उसके बारे में क्या सोचते हैं, अर्थात् स्वयं के बारे में धारणा समाज में रहने वाले अन्य लोगों के द्वारा प्रत्यक्षण के आधार पर बनाई जाती है। सभी प्रतीकात्मक अन्त:क्रियावादियों का कहना है कि एक ओर तो मनुष्य का स्व होता है और दूसरी ओर उसके आस-पास का विशाल समाज। इस समाज को स्व के माध्यम से समझने का प्रयास व्यक्ति करता है। इस तरह के समझ में प्रतीकों की निर्णायक भूमिका होती है।

सामाजिक विनिमय सिद्धान्त (Social Exchange Theory) का केन्द्रीय बिंदु सामाजिक विनिमय है। आधुनिक विनिमय सिद्धान्तवेत्ताओं में जार्ज होमन्स, पीटर ब्लाऊ, और माइकल हेचर के नाम विशेष रूप से लिये जाते हैं। होमन्स ने विनिमय व्यवहारवाद को विकसित किया, ब्लाऊ ने संरचनात्मक विनिमय सिद्धान्त को एवं हेचर ने विवेकी सिद्धान्त को रखा है। उपयोगितावाद ने सामाजिक विनिमय सिद्धान्त को एक बौद्धिक आधार प्रदान किया। उपयोगितावादियों के अनुसार

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN

ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol-3 Issue-1
15 Jan-2012

भारत में समाजशास्त्रीय विश्लेषण के उपागम

डॉ0 अनूप कुमार सिंह

असिस्टेन्ट प्राफेसर, समाजशास्त्र विभाग, डी.ए.वी. कालेज, कानपुर

www.shodh.net

मनुष्य मूलत: विवेकशील प्राणी है, और अपने हर तरह के प्रयास में चाहता है कि उसे अधिकतम लाभ पहुँचे। सामाजिक यथार्थ को जानने के लिए शोधकर्ता इस उपागम का प्रयोग बहुतायत से करने लगे हैं। (दोषी व त्रिवेदी, 1996:200-24)

प्रघटनाशास्त्रीय उपागम एक ऐसा अध्ययन उपागम है जिसकी शुरूवात व्यक्ति से होती और व्यक्ति को स्वयं के अनुभव से जो कुछ प्राप्त होता है, उसे इसमें सम्मिलित किया जाता है। स्वयं के अनुभव से बाहर जो भी पूर्व मान्यताएँ, पूर्वाग्रह और दार्शनिक बोध होते हैं, वे सब इसके क्षेत्र के बाहर हैं। एडमण्ड हर्सल इस उपागम को शैक्षणिक आन्दोलन के रूप में उभार कर लाये। (साथाज, 1973:2) यद्यपि समाजशास्त्र में प्रभावी रूप से प्रघटनशास्त्रीय उपागम को प्रस्तुत करने का श्रेय एल्र्ड शूट्ज को जाता है। शूटज प्रघटनाशास्त्र के अन्तर्गत लोगों के दैनिक जीवन की परिस्थितियों को अधिक महत्त्व दिया तथा व्यक्तिनिष्ठ अध्ययन को प्रघटनाशास्त्र का आधार माना है। शूटज सामाजिक सम्बन्धों के बारे में दो अवधारणाओं को जन्म देते हैं- विशिष्टता एवं प्रकार। समाज में अनेक प्रकार की परिस्थितियाँ जन्म लेती हैं, कभी-कभी एक ही प्रकार की परिस्थितियों की पुनरावृत्ति होती है। शूटज का मत है कि प्रत्येक सामाजिक परिस्थिति का अध्ययन अन्तर्व्यक्तिनिष्ठता के आधार पर किया जाना चाहिये। फिनामेनालाजी चेतना, मस्तिष्क और जीव-जगत आदि अवधारणाओं द्वारा समाज की वास्तविकताओं का अध्ययन करता है।

पिछले लगभग दो दशकों में समाजशास्त्र में कुछ नवीन उपागमों का उदय हुआ है, जिनमें लोक विधि विज्ञान प्रमुख है। प्रतिदिन की घटनाओं को व्यवस्थित रूप से समझना इस पद्धति का उद्देश्य है, घटना का उतना महत्व नही है, जितना कि घटना के अर्थ का हैं। अर्थ बोध व्यक्ति के संज्ञान का परिणाम होता है। लोक-विधि विज्ञान, व्यक्ति के आंतरिक विचार लोक में प्रवेश करता है। अत: लोक विधि विज्ञान अर्थबोध की विधियों का पता लगाता है। लोक-विधि विज्ञान वह पद्धति है जो व्यावहारिक तर्क से संबंधित है अन्तरक्रिया में लोग घटनाओं का अर्थ लगाते हैं और उस अर्थबोध का आदान-प्रदान करते हैं, इस प्रक्रिया का अध्ययन करना लोक विधि विज्ञान है। इथनोमेथडोलॉली में सामाजिक वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त करने के लिए साधारण ज्ञान विधि को अपनाया जाता है। गारफिन्कल इथनोमेथडोलॉजी को वस्तुनिष्ठ वास्तविकता में दैनिक जीवन में होने वाली क्रियाओं का उत्पादन एवं इनका अध्ययन करने को महत्त्व देते हैं। इसके अन्तर्गत सामाजिक वास्तविकता को सिद्धान्तों के आधार पर न खोजकर नित्यप्रति की सामाजिक घटनाओं और उनके प्रति लोगों की प्रतिक्रियाओं में खोजने पर बल दिया जाता है। गारफिन्कल ने इस उपागम में कुछ मूलभूत अवधारणाओं का उल्लेख किया है- प्रलेखन विधि, संदर्भितता, टीकात्मक व्यवहार, चिन्तनशीलता, तार्किक विवरण।

गारफिन्कल ने अर्द्धप्रयोगात्मक अध्ययनों को संचालित करके यह तय किया कि प्रतिदिन के जीवन अन्तक्रिया के नियमों को चुनौती देना कठिन है, व्यक्ति जिससे अन्त: क्रिया करता है उनमें पारस्परिक विश्वास होता है, इसे गारफिन्कल आस्था की अवधारणा से इंगित करते हैं। अत: अन्त:क्रिया में जब तक आस्था की स्थिति बनी रहेगी, तब तक सामाजिक व्यवस्था बनी रहेगी। आस्था में अन्तर आते ही सामाजिक व्यवस्था विघटित होने लगेगी (श्रीवास्तव, 1996 : 129)

भारत जैसे विकासशील देशों में जहाँ परम्पराएँ एवं मूल्य संक्रमण के दौर में है समाज को व्याख्यायित एवं अर्थ प्रदान करने वाली अवधारणाएँ अपने पुराने अर्थ खोती जा रही है अर्थात् उन्हें पुनर्परिभाषित करने की आवश्यकता है। ऐसे में सामाजिक वास्तविकता को उद्भासित करना सरल नही हैं। नवीन उपागमों के माध्यम से बदलते भारत की समाजशास्त्रीय दशाओं से अर्थों को निकाला जा सकता है। भारतीय समाज को न तो ग्राम्शी की 'सिविल सोसायटी' न ही पोलायनी की 'एक्टिव सोसाइटी' एवं न ही मोहन्ती की 'क्रियेटिव सोसाइटी' के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है बल्कि यह तो 'जंक्शन सोसाइटी' है, जहाँ परम्परा और आधुनिकता समानान्तर चलती हैं। अत: शास्त्रीय उपागमों के स्थान पर नवीन उपागमों का प्रयोग अपरिहार्य सा होता जा रहा है।

नवीन समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों में पूँजीवाद का नया सांस्कृतिक तर्क, वैश्वीकरण का समाजशास्त्रीय उपागम, उत्तर संरचनावाद तथा नव प्रकार्यवाद, एन्थोनी गिडेन्स का संरचनाकरण का सिद्धान्त समीचीन है, एवं सामाजिक व्यवस्थाओं के नियमित चालन में अन्त:क्रियाओं के अर्थबोध को समझने में एवं दिन-प्रतिदिन की घटनाओं का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करने में शोधकर्ताओं द्वारा उपरोक्त उपागमों का प्रयोग अपने प्रयोगात्मक स्तर पर है, यद्यपि नव-समाज शास्त्रीय उपागमों के बिना समाजशास्त्र का सैद्धान्तिक क्षेत्र अधूरा है।

सन्दर्भ:-

1.दोषी, एस0एल0 : आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता एवं नवसमाजशास्त्रीय सिद्धान्त, रावत प्रकाशन, जयपुर, 1998

2.सिंधी, नरेन्द्र कुमार, समाजशास्त्रीय सिद्धान्त: विवेचन एवं व्याख्या, रावत प्रकाशन, जयपुर, 1998

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN

ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol-3 Issue-1
15 Jan-2012

भारत में समाजशास्त्रीय विश्लेषण के उपागम

डॉ0 अनूप कुमार सिंह

असिस्टेन्ट प्राफेसर, समाजशास्त्र विभाग, डी.ए.वी. कालेज, कानपुर

www.shodh.net

3.दोषी व त्रिवेदी : उच्चतर समाज वैज्ञानिक सिद्धान्त, रावत प्रकाशन, जयपुर, 1996
4.श्रीवास्तव, एच0सी0 आधुनिक समाज वैज्ञानिक सिद्धान्त परिचय, उ0प्र0 हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1982